



आचार्य विद्यासागर: अनुशासन की संकल्पना

डॉ सपना जैन

इतिहास एवं समाजशास्त्र में स्नातकोत्तर, शिक्षा स्नातक (B.ed), शिक्षा स्नातकोत्तर, (M.ed) शिक्षा विभाग से विद्यावाचस्पति (P.hd) फैशन डिजाइनिंग प्राकृतिक चिकित्सा डिप्लोमा

ई मेल—drspnjain@gmail.com

आचार्य विद्यासागर: अनुशासन की संकल्पना

प्रस्तुत शोध का मुख्य उद्देश्य आचार्य विद्यासागर जी के शैक्षिक विचारों में अनुशासन की संकल्पना का अध्ययन करना था। उद्देश्य की प्राप्ति हेतु शोधार्थी ने दार्शनिक शोध विधि का चयन किया जिसमें आचार्य प्रवर के विपुल साहित्य में से 20 ग्रंथों का चयन न्यादर्श की सोद्देश्य विधि के माध्यम से किया। ग्रंथों के गहन अध्ययन एवं विश्लेषण से निष्कर्ष के रूप में पाया गया कि अनुशासन शासन की शान है। आत्मानुशासन के लिए संयम व नियम को प्रधान तत्व माना है। उनके अनुसार अनुशासन अंदर से प्रकट होना चाहिए, जो इंद्रिय व मन को लगाम दे सके। आचार्य विद्यासागर जी के शैक्षिक विचारों के माध्यम से सामाजिक मूल्यों की पुनःस्थापना संभव है। विद्यार्थियों में उत्कृष्ट संस्कार तथा दिव्य आचरण का विकास होगा। साथ ही परस्पर सहयोग की भावना, सामाजिक मूल्यों का विकास, व्यवहारिक शुद्धता एवं जीवन की पवित्रता से अध्यात्मिक विकास होगा जिससे भारत को सुयोग्य नागरिक मिलेंगे और प्राचीन समृद्धशाली भारत की पुनःस्थापना होगी।

“अनुशासन शासन की शान है।”¹

दिगम्बर जैनाचार्य विद्यासागर नग्नपाद पदयात्री हैं, जो नदी की तरह प्रवाहमान स्वच्छंद, निर्मल व राग, द्वेष, मोह से दूर इन्द्रियजित हैं। ज्ञेय और सुकोमल व्यक्तित्व के धनी,



भौतिक कोलाहल से दूर रहते हैं। वे ज्ञानी, मनोज्ञ और वाग्मी साधु अपरिग्रही निर्ग्रथ दिगम्बरत्व धारण किये हुए प्रतिभा और तपस्या की जीवंत मूर्ति हैं। आचार-विचार की एकता के समर्थक व्रत नियम में अनुशासित मौनी साधक हैं। 'सरलता और सादगी का जीवन ही मानवता का विकास है' की दिव्यध्वनि गुंजरित करने वाले प्रभावक पुंज मुनि हैं। 'पुरुषार्थ करो अंतरंग सुधारो' जैसे सूत्र का शंखनाद करने वाले समाज सुधारक हैं। 'हित का सृजन अहित का विसर्जन' जैसे शिक्षा सूत्र देने वाले शिक्षाशास्त्री हैं। 'अतिव्यय नहीं, मितव्यय करो, धन का समुचित वितरण करो' महामंत्र के उद्घोषक अर्थशास्त्री हैं। 'अनुशासन शासन की शान है' को अपने जीवन में चरितार्थ करने वाले चरित्र निर्माता हैं। अतः आचार्य विद्यासागर जी के विचारों को जानना आज अत्यन्त आवश्यक है।

अनुशासन का शाब्दिक अर्थ नियम के अनुकूल चलना होता है। परंतु आचार्य प्रवर इसके अतंगत कर्तव्य पालन, आज्ञापालन, विचारों की उदारता, आत्मसंयम, अहिंसा, प्रेम वातावरण के साथ अनुकूलन, विनम्रता और नियमशीलता आदि गुणों के समावेश को अनुशासन मानते हैं तथा नियम के अनुसार कार्य करना और नियंत्रण में रहना इसके प्रमुख अंग मानते हैं। उनका मानना है कि बिना ब्रेक की गाड़ी और बिना लगाम का घोड़ा जैसे अपनी मंजिल पर नहीं पहुँचता उसी प्रकार बिना अनुशासन के विद्यार्थी अपने लक्ष्य को नहीं पा सकते। वे कहते हैं कि एक नदी सागर तक तभी पहुँच सकती है, जब उसके दोनों तट मजबूत हों, यदि तट भंग हो जाये तो नदी वहीं मरुभूमि में विलीन हो जायेगी। विद्यार्थी भी अनुशासन रूपी तटों के माध्यम से अपनी मंजिल प्राप्त करता है।²

आचार्य प्रवर की रचनाओं में अनुशासन के दो रूप दिखाई देते हैं—स्वानुशासन और परम्परागत अनुशासन। आत्मानुशासन याने स्वतः स्फुरित अनुशासन अथवा स्वयं का स्वयं पर अनुशासन, आत्मनियंत्रण इसमें व्यक्ति अपने आत्मबल और आत्म संस्कारों से स्वयं को अनुशासित करता है। इस संबंध में वे कहते हैं कि आत्मानुशासन ही विश्व में शांति व आनंद फैला सकता है, क्योंकि अनुशासन चलाने के भाव में, मैं बड़ा और दूसरा छोटा का भाव होता



है, किंतु आत्मानुशासन में छोटे-बड़े की कल्पना नहीं, सभी के प्रति समान भाव है। अपने द्वारा अपने पर नियंत्रण के समर्थक आचार्य प्रवर कहते हैं कि दूसरे पर अनुशासन करने के लिए बहुत परिश्रम उठाना पड़ता है, पर आत्मा पर शासन करने के लिए किसी परिश्रम की आवश्यकता नहीं होती मात्र संकल्प की आवश्यकता है। जिसका संकल्प जितना मजबूत होगा उसका आत्म नियंत्रण उतना ही दृढ़ होगा। आत्मानुशासन के लिए किसी की आवश्यकता नहीं है। आवश्यकता है एक मात्र अपनी कषायों के कुठाराघात करने की।³

परम्परागत अनुशासन से तात्पर्य उस अनुशासन से है, जो परम्परा से चला आ रहा है, जिसको स्वीकार न करने पर दण्ड का विधान किया गया है। जिसका उल्लेख उनके साहित्य में यत्र-तत्र मिलता है। उनके अनुसार उद्दण्डता दूर करने के लिए दण्ड संहिता की व्यवस्था होती है, ताकि उद्दण्डता को रोका जा सके। उनका मानना है कि दण्ड देना बुरा नहीं है, किंतु क्रूरता के साथ दण्ड नहीं देना चाहिए, क्योंकि इसमें सुधार की गुंजायश कम है, परंतु उसको विवेक के साथ दण्डित किया जाए तो वह सुधर भी सकता है। वे मानते हैं कि इस दण्ड के पीछे माँ के समान वात्सल्य, प्रेम व श्रद्धा का पुट हो, ताकि बालक विद्रोही न बनकर बुराइयों से स्वयं को हटा सके और अपना उचित उत्थान कर सके। दण्ड से उनका अभिप्राय शारीरिक दण्ड से न होकर उपेक्षित करने से है।⁴

उनकी मान्यता है कि उद्दण्ड व्यक्ति को उपेक्षित करना आरंभ कर दो तो वह संभल जाएगा। “मात्र दमन की क्रिया से कोई क्रिया फलवती नहीं होती है।”⁵ तथापि वे समय-समय पर ‘डांट’ के समर्थक अवश्य रहे। वे कहते हैं कि “शिष्य और शीशी दोनों में डांट आवश्यक है।”⁶ यदि उपेक्षा और डांट रूपी सजा से कार्य चल सकता है तो शिक्षक को फिर अन्य दंड के साधन नहीं अपनाने चाहिये, क्योंकि “जब सुई से काम चल सकता है तो तलवार का प्रहार क्यों और जब फूल से काम चल सकता है तो शूल का व्यवहार क्यों।”⁷

आचार्य प्रवर का मानना है कि विद्यालय में अनुशासन की नितान्त आवश्यकता रहती है, इसके बिना विद्यालय का कार्य सुचारु रूप से चलना असंभव हो जाता है। “कार्यक्रम की



शोभा अनुशासन से ही हुआ करती है।⁸ शिक्षा के दो स्तंभ शिक्षक और विद्यार्थी दोनों को अनुशासित रहना बहुत जरूरी है। विद्यार्थी को अपने चारों ओर के वातावरण से अनुकूल करने तथा अपने अध्ययन कार्य में ध्यान केंद्रित करने व वासनाओं पर विजय पाने के लिए अनुशासन आवश्यक है। इसी प्रकार शिक्षक को विद्यार्थी के साथ सामंजस्य करने तथा आत्म-नियंत्रण करने के लिए अनुशासन की पग-पग पर आवश्यकता पड़ती है। बालकों में अनुशासन की शिक्षा प्रारंभ से ही उचित प्रशंसा, पुरस्कार, दंड, सम्मान, पक्षपात रहित व्यवहार, न्याय-परता, अहिंसा, सत्य और आत्म नियंत्रण के द्वारा दी जा सकती है, साथ ही साथ गोष्ठी, सभा, खेलकूद, पाठ्येत्तर क्रियाओं के आयोजन तथा सांस्कृतिक कार्यक्रमों से भी अनुशासन के भाव उत्पन्न किये जा सकते हैं।

आचार्य प्रवर का मानना है कि अनुशासन और मानव जीवन का घनिष्ठ संबंध है, जिसके संयम और नियम दो प्रधान तत्व हैं। संयम का अर्थ, “इंद्रिय और मन पर लगाम लगाना”⁹ यह अनुशासन के लिए परम आवश्यक है। वे संयम को शिक्षक और विद्यार्थी में अनुशासन कायम करने का एक बड़ा सम्बल मानते हैं। आचार्य प्रवर का मानना है कि अनुशासन रूपी बीज का वपन विद्यार्थी में प्रारंभ से ही कर देना चाहिए। प्रारंभिक दशा में जिस प्रकार धूप में वनस्पति कुम्हला जाती है, किंतु आगे चलकर उसी धूप में वह फिर हरी-भरी हो जाती है, ठीक उसी प्रकार अनुशासन प्रारंभ में कठिन जरूर लगता है, किंतु कालांतर में सुखदाई हो जाता है। आचार्य प्रवर का मानना है कि मिलन अलग और मिल जाना अलग बात है। रेत का जल के साथ मिलन होता है, किंतु शक्कर दूध में घुल-मिल जाती है, अतः विद्यार्थी को भी अनुशासन को जिंदगी के साथ मिला लेना चाहिए। वे अनुशासन को प्राण और त्राण; (रक्षा करने वाला) दोनों मानते हैं। उनका मानना है कि अनुशासन से बधा व्यक्ति कहीं भी चला जाए अकेलापन महसूस नहीं करेगा। प्रत्येक विद्यार्थी को अनुशासन को प्राण समझकर पालन करना चाहिए।¹⁰



उनके अनुसार अनुशासन ही शरीर को शोधता, हृदय को हरा-भरा करता, मस्तिष्क को माँजता है और आत्मा को आँजता है। यह मन व इंद्रियों की स्वच्छंदता को दूर करता है। अनुशासन के बिना संस्था, विद्यालय, समाज शासन के कार्य सुचारु रूप से चलाना असंभव ही नहीं, दुष्कर भी हैं, अतः मानव समाज, संस्था का उत्थान और कल्याण अनुशासन के परिपालन पर निर्भर है। आचार्य प्रवर कहते हैं कि "देश के उत्थान के लिए सामाजिक विकास के लिये, और जितनी भी समस्याएँ हैं उन सभी के समाधान के लिए अनुशासन को परमावश्यक है।"¹¹

आचार्य प्रवर किसी भी दशा में अनुशासन की आड़ में बालकों को स्वेच्छाचारिता, अनियमित स्वच्छंदता को पसंद नहीं करते। वे अच्छे आचार-विचार को बढ़ाने के लिए स्वतंत्रता को मानते हैं, परंतु स्वच्छंदता को नहीं। विद्यार्थियों में स्वतंत्र बुद्धि होनी चाहिए। सर्वोच्च ढंग की स्वतंत्रता के साथ अधिक से अधिक अनुशासन और नम्रता लगी हुई है। जो आजादी अनुशासन और नम्रता से आती है, उसे दूर नहीं किया जा सकता। अनियंत्रित स्वच्छंदता उच्छृंखलता की निशानी है।¹²

इस प्रकार आचार्य प्रवर विद्यार्थी को सुधारने के लिए दण्ड देने की बजाय प्रायश्चित्त का विधान बताते हैं। बालक में इस प्रकार के संस्कार दिये जायें कि उससे कभी भूल कर भी कोई अपराध हो जाये तो वह स्वयं आ कर उसे स्वीकार करे, और आत्मग्लानि आनी चाहिये। निंदा और भविष्य में गलती दुबारा न हो इसका प्रायश्चित्त शिक्षक से ले। आचार्य प्रवर कहते हैं कि विद्यार्थी को अपनी भूल मान लेना ही प्रायश्चित्त है।¹³

सामान्यतः विद्यार्थी द्वारा शिक्षण संस्थाओं के नियमों का पालन न करना अनुशासनहीनता माना जाता है, परंतु अपने वास्तविक अर्थ में इसके अंतर्गत व्यवहार मानदण्डों और शासन के नियम कानून का न मानना भी सम्मिलित होता है। आज अधिकतर शिक्षण संस्थाओं में छात्र संस्थाओं के नियमों का पालन करना अपना धर्म एवं कर्तव्य नहीं समझते हैं। कक्षा में नियमित रूप से उपस्थित न होना, शिक्षकों के साथ अभद्र व्यवहार, छात्राओं के साथ छेड़-छाड़, परीक्षा में नकल, आए दिन प्रदर्शन, अनशन, हड़ताल और तोड़-फोड़, छात्रों की आपसी दलबंदी, रैगिंग और बीडी-सिगरेट पीना आम बात हो गई है।



वर्तमान शिक्षा से मिल रहे संस्कारों को देख आचार्य प्रवर को कहना पड़ा कि "आज युवकों के मुख से जब पढ़ाई के स्थान पर परीक्षा बढ़ाने के लिए हड़ताल की बात सुनता हूँ तो मैं दंग रह जाता हूँ कि ये संस्कार इनमें कहाँ और कैसे आये। अब लोग परिश्रम से डरते हैं, पुरुषार्थ करने से डरते हैं और यह बिना प्रयास सब पा लेने की नीति हमें रसातल की ओर ले जाएगी। ऐसी स्थिति में विकास चाहते हुए भी विनाश ही होगा।"¹⁴ आज अनुशासनहीनता के इतने रूप हो गए कि समय रहते इस समस्या का समाधान न किया गया तो देश में और अधिक अराजकता फैलने की संभावना है।

ऐसी अनेक समस्या के कारण और निदान पर बहुत पहले से विचार होता आ रहा है, परंतु जितने भी प्रयास किए गए वे सब विफल रहे। स्वतंत्रता पश्चात् इस समस्या पर सर्वप्रथम विचार विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग 1948 ने किया। उन्होंने उच्च शिक्षा स्तर पर अनुशासनहीनता के कारणों को चार वर्गों में अंकित किया—सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक और शैक्षणिक। इसे रोकने के चार उपाय सुझाए—संस्थाओं में शिक्षक—शिक्षार्थियों के बीच निकट संबंध स्थापित करना, पढ़ाई एवं खेल—कूद की उत्तम व्यवस्था रखना, छात्रों को दलगत राजनीति से अलग रखना एवं छात्रों में आत्मसम्मान की भावना विकसित करना। इन सबमें अभिभावकों, नेताओं और प्रेस का सहयोग लेना। मुदालियर आयोग 1952 ने भी अनुशासन का महत्त्व बताते हुए कहा कि जनतंत्र सफलापूर्वक कार्य उस समय तक नहीं कर सकता, जब तक सभी व्यक्तियों को अपना उत्तरदायित्व निभाने का प्रशिक्षण न दिया जाए इसके लिए अनुशासन के प्रशिक्षण की आवश्यकता है। इसके बाद मुदालियर आयोग और कोठारी आयोग ने भी इस समस्या पर विस्तार से विचार किया। इस बीच राज्य और राष्ट्रीय स्तर पर इस समस्या के कारणों और निदान हेतु अनेक समितियों का गठन किया गया। इन सबने शिक्षा संस्थाओं में अनुशासनहीनता के कारण व उसे दूर करने के अनेक उपाय बताए।

इसी संदर्भ में आचार्य प्रवर ने अनुशासनहीनता का मुख्य कारण वर्तमान शिक्षा प्रणाली को माना है। उनका कहना है कि "आज किताब का तो अध्ययन कोई करता नहीं और



कुंजियों के द्वारा पास होने वाले विद्यार्थी बहुत हैं। उन विद्यार्थियों को देखकर ऐसा लगता है कि जब ताला नहीं मिलेगा तो कुंजियों का उपयोग कहाँ करेंगे ? उस कुंजी की कीमत तब है जब मूल किताब में क्या लिखा है, उसको देखने में 'की' लगा दो तो ठीक है, लेकिन जब नवम्बर और अप्रैल आ जाता है उस समय कालेज के विद्यार्थी पढ़ाई प्रारंभ करते हैं तो पास कैसे होंगे ?" ¹⁵ उनका मानना है कि विद्यार्थियों के सामने आज कोई उदात्त लक्ष्य नहीं है, कोई आदर्श नहीं है और न ही कोई प्रेरणा। उनका एकमात्र उद्देश्य है— किसी प्रकार डिग्री प्राप्त कर उसके बल पर नौकरी प्राप्त कर ऐशो-आराम की जिंदगी बिताना। आखिर समाज में भी तो बस इसी की इज्जत है, समाज सेवा, राष्ट्र निर्माण, मानवता की पूजा, सत्य, अहिंसा, प्रेम, अपरिग्रह, ब्रह्मचर्य और संतोष जैसे आदर्शों को प्रेरित करने वाली शिक्षा वर्तमान पाठ्यक्रम से नहीं मिल पा रही है क्योंकि उद्देश्य मात्र शिक्षा देना रह गया है, जिसमें अधिकतम उपलब्धि हो सके एवं शिक्षा के वास्तविक उद्देश्य 'व्यक्तित्व का पूर्ण विकास' को लगभग विस्मृत कर दिया गया है। यदि इस पर ध्यान दिया गया होता तो पूर्ण अनुशासित विद्यार्थी मिल सकते थे। राधाकृष्णन्, मुदालियर और कोठारी सभी आयोगों ने छात्र अनुशासनहीनता का एक प्रमुख कारण धार्मिक एवं नैतिक शिक्षा का अभाव बताया और इसे दूर करने के लिए इसकी शिक्षा पर बल दिया।

आचार्य प्रवर ने अनुशासन को शिक्षालय तक सीमित न रखकर उसे जीवन की वास्तविक गहराई से जोड़ा है। उनका मानना है कि विवेक द्वारा नियमित स्वतंत्रता में ही अनुशासन का सार निहित है। जो व्यक्ति की उच्छृंखलता को रोकता है। उनका कथन है कि बाह्य अनुशासन क्षणिक एवं अस्थायी होता है। अतः वे आन्तरिक चेतना को जाग्रत करने वाले आत्मानुशासन को महत्त्व देते हैं, क्योंकि यह स्वतः प्रेरित होता है और जो स्व की पहचान कराता है। अतः आज आन्तरिक अनुशासन की अत्यधिक आवश्यकता है, जिसमें विद्यार्थी अपनी आत्मशक्ति का विकास एवं व्यवहार का विश्लेषण करके अपना विवेक जाग्रत कर सके। उसका यही विवेक उसकी समाज विरोधी क्रियाओं पर रोक लगाकर उसके सर्वांगीण विकास में सहायक होगा। वर्तमान में विभिन्न आयोगों के सुझावों से बाह्य अनुशासन और आचार्य प्रवर

की आत्मानुशासन की संकल्पना से अनुशासनहीनता की विभीषिका को दूर करने का प्रयास किया जा सकता है।

‘अनुशासन ही जीवन की शान है’ के उद्घोषक आचार्य प्रवर ने अनुशासन को जीवन का अभिन्न अंग माना है जिसका पालन विद्यार्थी को ही नहीं शिक्षक के लिए भी अनिवार्य बताया है। उनका मानना है कि दोनों के अनुशासित रहने पर ही शिक्षण प्रक्रिया प्रभावी होगी। उनके अनुसार अनुशासन का अर्थ मात्र नियमों के अनुकूल चलना ही नहीं, वरन् कर्तव्य पालन, आज्ञा पालन, आत्म संयम आदि गुणों को भी वे अनुशासन मानते हैं। उन्होंने आत्मानुशासन के लिए संयम व नियम को प्रधान तत्व माना है। उनके अनुसार अनुशासन अंदर से प्रकट होना चाहिए, जो इंद्रिय व मन को लगाम दे सके। उनका मानना है कि इस अनुशासन से विद्यार्थी अपने व्यवहार का विश्लेषण कर सही दिशा में अपना विकास कर सकता। आचार्य प्रवर की विचारधारा लोकतांत्रिक (स्वयं शासन) प्रणाली को मान्यता देती है। आचार्य प्रवर ने शिक्षक व विद्यार्थी के अनुशासन की जो बात कही है, वह वर्तमान परिवेश में अत्यन्त प्रासंगिक है।

1. ऐलक नम्रसागर, (1998) शिक्षा एक संस्कार (आचार्य प्रवर के प्रवचनों का संकलन), सिंघई आफसेट, मण्डला, मध्यप्रदेश पृ.सं. 14।
2. आचार्य विद्यासागर, (1996), समग्र (खण्ड चार), समग्र प्रकाशन, सागर, मध्यप्रदेश, पृ.सं. 359।
3. उपरोक्त पृ.सं. 355।
4. आचार्य विद्यासागर, (1998), सिद्धोदय सार, श्री विद्यासागर इंटरप्राईजेस, इंदौर मध्यप्रदेश, पृ.सं. 59।
5. आचार्य विद्यासागर, (1988), मूकमाटी महाकाव्य, भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली, पृ.सं. 391।
6. मुनि कुंथुसागर, (2011), परमार्थ देशना (आचार्य प्रवर के विचार सूत्रों का संग्रह), धर्मोदय साहित्य प्रकाशन, सागर, मध्यप्रदेश, पृ.सं. 7।



7. आचार्य विद्यासागर, (1988), मूकमाटी महाकाव्य, भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली, पृ.सं. 257 ।
8. मुनि कुंथुसागर, (2011), परमार्थ देशना (आचार्य प्रवर के विचार सूत्रों का संग्रह), धर्मोदय साहित्य प्रकाशन, सागर, पृ.सं. 7 ।
9. आचार्य विद्यासागर, (1996), समग्र (खण्ड चार), समग्र प्रकाशन, सागर, मध्यप्रदेश, पृ.सं. 359 ।
10. आचार्य विद्यासागर, सामुहिक चर्चा, आडियो सी. डी., जबलपुर, मध्यप्रदेश, दिनांक 16 फरवरी 2009 ।
11. आचार्य विद्यासागर, (1996), समग्र (खण्ड चार), समग्र प्रकाशन, सागर, मध्यप्रदेश, पृ.सं. 51 ।
12. उपरोक्त ।
13. उपरोक्त ।
14. आचार्य विद्यासागर, (1996), समग्र, (खण्ड चार) समग्र प्रकाशन, सागर, पृ.सं 282
15. उपरोक्त, पृ.सं. 560 ।